संपादकीय

पहले अंडा या पहले मुर्गी?

पंद्रह जनवरी को होने वाली भारत-पाकिस्तान वार्ता पठानकोट एयरबेस पर आतंकी हमले के कारण स्थगित हो गई है। भारतीय विदेश मंत्री सुषमा स्वराज के पाकिस्तान दौरे के समय बातचीत की पृष्ठभूमि तैयार हुई थी, जिसे प्रधान मंत्री नरेन्द्र मोदी की आकस्मिकपाकिस्तान यात्रा से मजबूत आधार मिला था। हालॉकि वार्ता के लिए नई तारीख के एलान की शीघ्र संभावना भी है, जिससे वर्तमान नेतृत्व के उग्र अतीत वाले तेवर में आई नरमी का संकेत मिलता है। पाकिस्तान की नवाज शरीफ सरकार ने उत्साह एवं सदाशयता दिखाते हुए बातचीत का रास्ता सुगम किया है। फिर भी इस पर तात्कालिक रूप में ग्रहण तो लग ही गया है। यों पठानकोट हमले से कुछ पहले और बाद में पाकिस्तान में भी आतंकवादी हमले हुए हैं जो बड़े भी रहे हैं। भारत में किसी भी आतंकी हमले के लिए पाकिस्तान को कोसा जाता है। पाकिस्तान में होने वाले हमलों के लिए भारत पर भी उंगली उठती ही है। इस बार भी यही हुआ है। निश्चित रूप से भारत से अधिक दहशतगर्दी पाकिस्तान में है। यही नहीं, अफगानिस्तान के बाद अगर कहीं अधिक आतंकवाद है तो वहस्थान पाकिस्तान ही है। ये स्थान जेहादियों के लिए न केवल पनाहगार हैं, बल्कि चाहे-अनचाहे उत्पादक भी साबित हुए हैं। स्वाभाविक कि इन्हें इसका खामियाजा भी भुगतना पड़ा है और ज्यादा भुगतना पड़ा है। कोई भी देश अपने यहॉ की आतंकवादी गतिविधियों के लिए दूसरे देश पर दोषारोपण करके अपनी जिम्मेवारी से बच नहीं सकता। आतंक के उत्पादन व विस्तार के लिए दूसरे जिम्मेदार हो सकते हैं, पर इसे रोकने या न फैलने देने के दायित्व से बाकी मुक्त नहीं हो जाते। फिर हिंसक आतंक ही आतंक नहीं होता, बल्कि आतंक अहिंसक भी होता है। आतंकी हिंसा नरम एवं अहिंसक आतंक की अंतिम परिणति है। सभी प्रकार के भय, आतंक व हिंसा के मूल में यही मानसिक, वैचारिक और आर्थिक आतंक काम करता है जो चिरघातक भी होता है। विचित्रता यह है कि आतंकी हिंसा की निंदा करने वाले भी ऐसा आतंक फैलाने में पीछे नहीं रहते - 'बिन भय होहिं न प्रीत' के कारण, जबकि सच्चाई यह है कि भय से चाहे कुछ भी हो जाए, पर प्रेम-प्रीत नहीं उपजता।

निस्संदेह, भारत-पाकिस्तान निकटतम सहयोगी न हों, निकटस्थ पड़ोसी जरूर हैं। स्वाभाविक है कि इनमें दोस्ती और दुश्मनी की संभावनाएँ भी अपार होंगी, दोनों की एक छोर दूर होती है, तो दूसरी बिल्कुल सटी होती है। एक से छिटकने पर दूसरे पर आ जाना बहुत सहज है। आतंक, हिंसा और अशांति न इनके स्वयं के हित में है और न एक-दूसरे के हित में। किसी विवाद को लंबे समय तक टालना भी ठीक नहीं, क्योंकि यह सभी पक्षों को सुविधा देता है कि वे जब जैसी मर्जी हो, तब तैसी रस्म या स्वांग रचने लगें। राम जन्मभूमि विवाद सहित कोई भी समस्या इसी कारण हल होनी चाहिए, ताकि ऐसे मुद्दे की आड़ में कोई मनमाफिक तनाव-विग्रह पैदा न करसके। यह सही है कि बहुतों का हित ऐसे तनाव-विवाद के जिंदा रहने पर ही टिका रहता है और जिसे यह सब करना है, वह एक समस्या के सुलझने पर दूसरे दर्जनों मुद्दे ढूँढ़ ही लेगा; फिर भी एक बार थोड़ा-बहुत ले-देकर विवाद सुलझा लेने में ही भलाई है। कभी-कभी विवाद के समाधान हेतु झगड़ा व युद्ध तक होता है, पर इस दरम्यान विवाद सुलझता नहीं; कई बार इतना उलझ जाता है कि फिर कभी ठीक नहीं होता। जंग की क्षति के बाद अंततः शांतिपूर्ण वार्ता-संधि के द्वारा ही कोई समाधान उपलब्ध होता है। भारत-पाकिस्तान- वार्ता जंग के विकल्प के तौर पर नहीं होनी चाहिए; वरन् यह नियमित रूप में सामान्य ढंग से होनी चाहिए। किसी घटना विशेष के कारण इसे रोक देना या छोड़ देना भी ठीक नहीं है। पाकिस्तान में जो आतंकी हमले होते हैं, वह आम पाकिस्तानी या पाकिस्तान सरकारनहीं कराती। इसी प्रकार भारत में हुए किसी भी आतंकी हमले के लिए पूरे पाकिस्तान को कठघरे में खड़ा करना न्यायोचित नहीं। जिस प्रकार पाकिस्तान में पाकिस्तानविरोधी शक्तियॉ कार्यरत हैं, ठीक उसी प्रकार वहॉ भारतविरोधी ताकतें भी हैं और भारतविरोधी ताकतें भारत में नहीं हैं क्या? बिना भारतीयों के शामिल हुए भारत में छोटा-बड़ा कोई भी आतंकी हमला संभव नहीं। पूरे पाकिस्तान को आतंकवाद का पर्याय मानना उचित नहीं, क्योंकि देश किसी का नहीं होता, लोग देश के होते हैं। इसलिए शक्तिशाली जन सीधे देश-राज्य का हस्तांतरणकर लेते हैं और जिनका देश होने का दावा किया जाता है, वे सब देखते रह जाते हैं। इसके अनगिनत उदाहरण उपलब्ध हैं। फिर बातचीत पाकिस्तान सरकार से होगी, न कि आतंकवादियों से; हालॉकि वे भी बातचीत करना चाहें तो मना करना अनुचित ही होगा। वार्ता से ही भारत-पाकिस्तान को किसी बड़ी न्यायपूर्ण लड़ाई में सम्मिलित किया जा सकता है। वस्तुतः दोनों को मिलकर अधर्म, अन्याय, उत्पीड़न के विरुद्ध जेहाद छेड़ना चाहिए; जहॉ सत्य, धर्म और इंसानियत का बोलबाला हो; जिसके लिए भगवदगीता में 'यदा यदा हि धर्मस्य.....' कहकर धर्म की स्थापना का ध्येय व्यक्त किया गया है। परंतु इसके लिए सर्वप्रथम प्रतिकारी को अपने अंदर और अपने स्तर पर किसी भी तरह की नीचता-दुष्टता के अंकुर नहीं फूटने-पनपने देना होगा। पुरातन युग से संसार का प्रत्येक अंतर्बाह्य संग्राम अंततः धर्म-अधर्म, न्याय-अन्याय का ही संग्राम रहा है, लेकिन आजकल यह अधिकतर अधर्म-अधर्म, अन्याय-अन्याय के ही मध्य होता है; लेकिन दोनों पक्ष धार्मिक-न्यायिक होने का दावा करते हैं, ऐसे में अत्याचार, हिंसा की निंदा करने की बजाय इसके जड़-मूल कोपकड़ना ज्यादा जरूरी हो जाता है जो आवश्यक नहीं कि वहीं हो, जहॉ वर्तमान में दिखाई दे रहा है अथवा जहॉ अब दिखाई नहीं दे रहाहै। यहॉ 'पहले अंडा या पहले मुर्गी' के अस्तित्व का शाश्वत प्रश्न उपस्थित रहता है। अनाचार-अत्याचार को रोकने वाली कार्रवाई कहॉ तक न्यायिक है और कहॉ से अन्यायिक - इसका निर्णय आसान नहीं है। आतंकी हिंसा को रोकने वाली हिंसा भी हिंसा ही होती है, फिरभी वह प्रशंसनीय होती है। सीधे हिंसा में जितने लोग मरते हैं, उनसे कम नहीं आतंक-अपराध को रोकने के क्रम में मारे जाते हैं। ऐसे मेंशुरुआती गलती, शरारत, बदमाशी, अपराध, षड्यंत्र की भूमिका सर्वाधिक जिम्मेवार होती है, पर इसे चिन्हित करना आसान नहीं होता, ठीक वैसे ही जैसे यह निर्णय करना सरल नहीं कि पहले अंडा का अस्तित्व सामने आया या फिर मुर्गी का? वैज्ञानिक चमत्कार की बातछोड़ दें तो बिना अंडा के मुर्गी कहॉ से आएगी और बिना मुर्गी के अंडा कहॉ से आएगा?

यद्यपि वार्ता से भी दृष्टि में बदलाव होता है, तथापि वार्ता से पहले दोनों देशों के नजरिये एवं पूर्वधारणाओं में परिवर्तन अपेक्षित परिणाम के लिए जरूरी है, अन्यथा एक दूसरे को बरगलाने व उलझाए रखने और अंततः स्वयं भी गफलत में रहकर ख्याली पुलाव पकाने-खाने के सिवा कुछ नहीं होगा। अभी तक भारत व पाकिस्तान के परंपरागत रुख में कोई बड़ा बदलाव नहीं आया है, यद्यपि आज हिन्दुस्तान के बनिस्बत पाकिस्तान आतंकवाद से ज्यादा त्राहि-त्राहि कर रहा है। वहॉ जेहादी अधिक

महफूज महसूस करते हैं। भारत के लिए आतंकवाद, तो पाकिस्तान के लिए कश्मीर सर्वोच्च प्राथमिकता का मुद्दा है। पाकिस्तान युद्ध न सही, बातचीत के माध्यम से कश्मीर की आजादी या अपने में मिलाने का दावा करता है, जबकि भारत न युद्ध से, न वार्ता से और न शांति से कश्मीर पर कोई किफायत देना चाहता है। भारत के लिए कश्मीर एकता और अखण्डता के समक्ष उग्रवाद का प्रश्न है, तो दूसरी ओर पाकिस्तान के लिएकश्मीरियों के मूल अधिकार और स्वतंत्रता का सवाल सर्वोपरि है। कश्मीर की आजादी की चाह की आड़ में पनपते आतंकी गतिविधियोंऔर घुसपैठ पर भारत आश्वासन ही नहीं, बल्कि ठोस कार्रवाई चाहता है, जबकि दहशतगर्दी के खिलाफ पाकिस्तान की लड़ाई अपना नुकसान न होने देने तक सीमित है; वह भी तब जब भारत ही नहीं, वरन् दुनिया के अनेक देश और अमेरिकी राष्ट्रपति बराक ओबामा तक ने खुलेआम आतंकी गतिविधियों को रोकने के लिए पाकिस्तान को नसीहत दी है। इसका कारण भी भारत-पाकिस्तान के अलग-अलग अस्तित्व के निर्माण की नींव में निहित है, जहॉ विभाजन का एकमात्र आधार धर्म-संप्रदाय रहा है। इसलिए आज भी चाहे अपने- अपने यहॉ के हिन्दुओं-मुसलमानों की दुर्दशा भारत-पाकिस्तान को कम दिखाई देती हो, पर भारत के मुस्लिमों की समस्या पर पाकिस्तान में तथा पाकिस्तान के हिन्दुओं की दुरावस्था पर भारत में ऑसू बहाए जाते हैं, जिन्हें घड़ियाली कहना भी पूर्णतः ठीक नहीं होगा। इससे एक दूसरे को प्रमाण पत्र मिलता है कि भारत में हिन्दू और पाकिस्तान में मुस्लिम मजे में हैं। यदि ऐसा भी होता तो दोनों विश्व के सर्वाधिक समुन्नत देश होते। बंगलादेश के पाकिस्तान से अलग हो जाने के बावजूद पाकिस्तान का कश्मीर से सहज लगाव, व हमदर्दी उसके मुस्लिमबहुल होने के कारण ही है, चाहे इसकी खुली घोषणा न होती हो। यह एक ज्वंलत प्रश्न है कि मुस्लिम बहुल क्षेत्रों में अलगाववाद-आतंकवाद क्यों पनपता है? धार्मिक आधार पर अलग राष्ट्र के निर्माण की जरूरत क्यों दर्शायी जाती है? इसका कारक दूसरों में होता है या स्वयं मुस्लिमों में? विचित्र विडंबना है कि एक ही जाति, वर्ग, संप्रदाय जब बहुसंख्यक होता है, तब वह दूसरों पर दबंगता दिखाता है और जहॉ अल्पसंख्यक होता है, तहॉ उसके सोचने-रहने का ढंग बिल्कुल भिन्न रहता है; वह मिलजुल कर भाईचारे सेरहने की अपेक्षा रखता है। बहुसंख्यक होने पर जैसा व्यवहार करता है, ठीक उसके विपरीत व्यवहार की अपेक्षा अल्पसंख्यक होने पर करता है। कई बार संख्याबल से अधिक आर्थिक सबलता तथा संसाधनों पर नियंत्रण-शक्ति से यह सब तय होता है, जिसकी वजह से एक वर्ग के भीतर भी निरंतर रगड़ व टकराहट होती है। अंग्रजों का भारत पर लंबे समय तक शासन भी इसी का नतीजा था। अंग्रेज अल्प संख्या में होकर भी दुनिया की बहुत बड़ी आबादी तथा भूभाग पर अपने बुद्धि, साहस, पराक्रम के कारण ही आधिपत्य स्थापित करपाए थे, न कि 'फूट डालो और राज करो' की नीति के कारण, जैसा कि कहा जाता है; यद्यपि अति सीमित संदर्भ में यह भी सही हो सकता है, पर इसे अजमाने में कौन पीछे है, बेशक चाहे सफलता न मिली हो। भारत में मुसलमान कम अवश्य हैं, पर अल्पसंख्यक नहीं हैं। आखिर बीस करोड़ की आबादी अल्पसंख्यक कैसे हो सकती है? यह इतनी बड़ी जनसंख्या है कि कोई चाहे भी तो इन पर बड़ा जुल्मनही कर सकता, इनसे टकराव जरूर हो सकता है और होता भी है। वस्तुतः वर्चस्व राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर ही तय नहीं होता, बल्किस्थानीय-क्षेत्रीय स्तर पर भी होता है।

भारत-पाकिस्तान वार्ता में दोनों ओर की सरकारें अपने देश के जन-दबाव के कारण ज्यादा लचीली नहीं हो सकतीं। ऐसे में मीडियाकी भूमिका महत्वपूर्ण हो सकती है। आधुनिक लोकतंत्र के तीनों स्तंभ कार्यपालिका, विधायिका तथा न्यायपालिका का गठन राष्ट्रों के स्तर पर होता है और देश का हित ही इनके लिए सर्वोच्च होता है, वहीं चौथे स्तंभ वाली पत्रकारिता के लिए पूरी दुनिया का ऑगन अपना होता है। यद्यपि यह भी किसी देश में ही होता है, परंतु देश का ही नहीं होता। वैश्विक आत्मिकता तथा मानवता की रक्षा पत्रकारिता का चरम लक्ष्य है। दुर्भाग्य से भारत-पाकिस्तान रिश्ता के मसले पर मीडिया की चेतनशील भूमिका दिखाई नहीं देती; यहॉ या तो भारतीय मीडिया होती है या फिर पाकिस्तानी मीडिया, जो अपने देश के बॅधे-बॅधाए हितों के लिए हो-हल्ला करते हुए मीडिया धर्म कासपाट निर्वाह करती है। इससे भारत-पाकिस्तान के बीच बातचीत का माहौल बनने की जगह और अधिक गरम व तनावपूर्ण हो जाता है।मीडिया केवल मीडिया होनी चाहिए, भारतीय, पाकिस्तानी या पाश्चात्य नहीं। यह भी सुनने को मिलता है कि आतंकवाद का कोई धर्म- मजहब नहीं होता, पर धर्म-मजहब के नाम पर आतंकवाद चलता है। अन्याय, उत्पीड़न, अधर्म को धर्म की तरह अपनाकर चलने-चलाने की सदियों पुरानी परंपरा इसी धरा का सच है। वास्तव में धर्म-मजहब से आतंकवाद उतना ही जुड़ा है, जितना कि नहीं जुड़ा है। अतः 'हिन्दू-मुस्लिम भाई भाई' कहने की उपयोगिता नहीं, क्योंकि जब हिन्दू हिन्दू, मुस्लिम मुस्लिम ही भाई भाई नहीं; और तो और, जहॉ भाई ही 'भाई' कम मिलते हैं, वहॉ केवल मानवीय जीवन मूल्यों का आत्मिक रिश्ता कायम हो सकता है, जहॉ सीधा रिश्ता न होकर भी लगावका रिश्ता होता है। यह इंसानियत के धरातल पर किसी का किसी से भी हो सकता है और इसी सवाल पर किसी से भी टूट सकता है। भारत-पाकिस्तान के लिए एक दूसरे से संवाद से पहले अन्तर्संवाद द्वारा अपने हित की तलाश में दूसरे के हितों का ख्याल रखना जरूरी है। अंततः भारत का हित पाकिस्तान के हित से पृथक् नहीं है और पाकिस्तान का हित भारत के हित से परे नहीं है - इस बोध से दोनोंअभिन्न सहयोगी व पड़ोसी सिद्ध होंगे, अन्यथा केवल खानापूर्ति के लिए बातचीत या बातचीत की खानापूर्ति का कोई मतलब नहीं है, यह दूसरों के लिए झॉसा है और स्वयं के लिए धोखा।

संपादकीय

बेशर्त रिश्ता बनाम रिश्ते की शर्त

आए दिन समाचार पत्रों व दूरदर्शन चैनलों पर पढ़ने-सुनने को मिलता है - 'रिश्ते का कत्ल', 'बाप ने बेटी से बलात्कार किया', 'पत्नी ने प्रेमी संग मिलकर पति की हत्या की', 'पति ने पत्नी को दोस्तों के हवाले किया' 'बच्चों की हत्या के बाद माँ ने आत्महत्या की', 'प्रेमी ने प्रेमिका की हत्या की'...आदि-आदि। यह सब सुनकर कैसा लगता है? यह अपराधों की जघन्यता दर्शाता है या फिर रिश्तों में आई तल्खी-संवेदनहीनता? इनसे बिल्कुल परे ध्यान दूसरी तरफ भी जाता है कि रिश्ते का कत्ल होकर भी रिता तो ज्यों का त्यों अस्तित्वमें है; भले ही जिस जीवन के कारण और जिस जीवन के लिए रिश्ते की डोर बनी-बँधी थी, वह खत्म हो गया। इस प्रकार आदमी और उसका जीवन मरता है, किन्तु रिश्ता अटूट रहता है? यह अलग बात है कि किसी रूप में संबंधों व नातों की मौत के कारण ही इस तरह की घटनाएँ होती हैं। कैसी विद्रूपता है कि बाप ने किया तो बेटी से बलात्कार, पर रहेगा बाप ही और बेचारी बेटी भी बेटी ही रहेगी! बेटे ने माँ का खून किया, माँ ने इश्क के चक्कर में संतान को वीभत्सता से मौत के घाट उतारा, पर दोनों में रिश्ता रहता है बेटाऔर माँका ही! पत्नी पति का कत्ल कर-करवा कर भी रहती है पत्नी ही! रिश्ते की पहचान स्थायी है, जबकि छोटी-बड़ी घटनाओं सहित पूरी जिंदगी का अस्थायित्व उजागर होता है। यह अलग बात है कि ऐसी अल्पकालिक घटना के कारण दीर्घकालिक जीवन नष्ट-भ्रष्ट हो जाता है, जहाँ रिश्ता के होने अथवा न होने पर, दोनों ही स्थितियों में यह जीवन भर भारी पड़ता है। देश-दुनिया का नवीनतम कानून भी रिश्ते के आश्रय-आलंबन और जिसके कारण रिश्ता है, उसे तार-तार करने और मार देने के बाद भी रिश्तेदारी से वंचित नहीं करता। आखिर यह कैसा संबंध है, जिसमें सगे-संबंधी, रिश्तेदार एक दूसरे को बिल्कुल घृणित तरीके से बर्बाद-खत्म करने के बाद भी पीछा नहीं छुड़ा पाते। न मरने वाला मर कर और न मारने वाला मार कर, न बलात्कारी और न बलात्कृत, कोई अपने-अपने रिश्ते सेकभी निकल नहीं पाता। यही नहीं, घृणित-क्रूर कांड की पृष्ठभूमि में रिश्ता अधिक दृश्यमान होता है।

ऐसा क्यों होता है कि नजदीकी संबंधों, रिश्तों और नातों के भीतर रहते हुए व्यक्ति आपस में खून का प्यासा हो जाता है? एक दूसरे को तबाह व बर्बाद करने पर तूल जाता है? कामुक से कामुक व्यक्ति की उत्तेजना जिस रिश्ते के आभास मात्र से न केवल शांत, बल्कि पूर्णतः निरीह हो जानी चाहिए, वहाँ भी कामातुरता बढ़कर किसी भी सीमा तक जाने में संकोच नहीं करती है। जो कलियुगी व आधुनिकतम कारण इसके पीछे हैं, वे तो हैं ही; परंतु मूल बात यह है कि दोनों पक्ष संबंधी, रिश्तेदार, नातेदार तो होते हैं, पर संबंध, रिश्तेदारी, नातेदारी की आधारभूत शर्तें-मर्यादाएँ वहाँ नहीं होतीं। रिश्तेदारी-नातेदारी का आधार मूलतः रक्त संबंध है, जहाँ मातृत्व हो या न हो, पर संतान को जन्म दे दिया तो माँ होने-कहलाने में कोई अवरोध नहीं होता, जैसे मनुष्य के रूप में पैदा ले लेने के बाद आदमीयतन भी हो, तब भी आदमी कहलाने से कोई रोक नहीं सकता। इसी प्रकार पितृत्व, पत्नीत्व, पत्य भाव के बिना भी पिता, पत्नी, पति होने में बाहरी कठिनाई नहीं है। इसीलिए अब गुरु मिलते हैं, पर गुरुत्व कम मिलता है; शिष्य हैं, पर शिष्यत्व भाव नदारद है। और तो और, प्रेमी-प्रेमिका हैं, पर उनका प्रेम प्रपंच बनता जा रहा है, जिसकी वजह से वे एक-दूसरे की हत्या से भी गुरेज नहीं करते। किसी व्यक्ति, जाति, वस्तु व संबंध की पहचान उसके गुण, कार्य, विशेषता व भाव से होती है। रिश्ते का आधार आत्मिकता व अपनत्वहोता है, जिसकेसाथ कुछ मर्यादाएँ, कर्तव्य व बंदिशें भी जुड़ी होती हैं और वहाँ बनावटीपन, नाटकीयता, झूठ-फरेब, ढोंग-पाखंड, चालबाजी, नीचता, दुष्टता वाले व्यवहार के लिए परोक्षतः-प्रत्यक्षतः रत्ती भर भी स्थान नहीं होता। जिन रिश्तों में ये सब पनपने लगें अथवा जिस संबंध की बुनियाद इन्हीं पर पड़ी हो, उसका क्षय होना निश्चित है। इसके नष्ट हो जाने में सबकी कुछ न कुछ भलाई ही छिपी रहती है। धूर्त, नाटकी, साजिशकर्त्ता, चोर-डकैत लोग भी अपने गैंग के भीतर अपने प्रति ये सब पसंद नहीं करते।

अपनत्व एवं हार्दिक खुलापन का अभाव संबंधों को कमजोर करता है, परंतु इनमें दरार का एक प्रमुख कारण यह भी है कि रिश्ते बनाने के लिए आदमी स्वतंत्र नहीं है। बहुत सारे रिश्ते-नाते दाय रूप में प्राप्त होते हैं। कौन नाना, कौन मामा, कौन चाचा हो - यह कोईस्वयं तय नहीं करता। यह सब पहले से निश्चित होता है चाहे वह ठीक हो या बेठीक। यद्यपि माता-पिता भरण-पोषण से लेकर शिक्षा- दीक्षा तक संतान कैसी हो - यह निर्दिष्ट करते हैं, तथापि संतान कैसी हो - इसका बीजारोपण बहुत हद तक गर्भधारण के समय ही हो जाता है। संतान कब न हो - इसका तो कारगर अस्त्र कृत्रिम उपायों से ढूँढ़ लिया गया है, पर वह कैसी हो - इसकी कोई अवधारणा, खाका और उसे अमली जामा पहनाने का कार्यरूप सामान्यतः दंपती के मन-मानस और शरीर में गर्भधारण के समय या उससे पहले नहींहोता। बस वे सेक्स-संभोग करते हैं और संतान हो जाती है। अपने जीवनसाथी-संगिनी का चुनाव अंशतः या पूर्णतः कुछ लोग स्वयं करतेहैं और इसे भी पूर्वनिश्चित सात जन्मों का बंधन मानते हैं, पर आवश्यक नहीं कि व्यक्ति जो रिश्ता स्वयं बनाए, उसमें संकट न आए। संकट न भी आए, तब भी अक्सर एक पड़ाव पर आकर रिश्ते-संबंधों में ठहराव आ जाता है। यह दैनंदिन के निश्चित साँचे में ढलकर चलता है, जहाँ कोई नयापन, उन्नयन, उमंग-उत्साह नहीं होता। रोज मुँह धोने, नहाने, खाने की तरह यह चलता है, जबकि व्यक्ति का हर अगला क्षण पहले से बेहतर व विकसित होना चाहिए, क्योंकि पूर्व का अनुभव साथ होता है। पूजा-आराधना भी आरंभ से लेकर दस-बीस-पचास साल बाद तक जहाँ का तहाँ स्थिर रहकर संपन्न होती है, जबकि प्रत्येक अगली उपासना - रूप, पद्धति से लेकर परिणाम तक अधिक परिपूर्ण, उन्नत व आनदप्रदायक सोपान होनी चाहिए। लोग रिश्ते-संबंधों में ताजगी के लिए सैर-सपाटा, पार्टीबाजी, होटल- बाजी, सिनेमा सहित अन्य माध्यमों से मौजमस्ती करते हैं, जीवन की क्षणिक खुशी एवं सुख तलाशते हैं। इनका महत्व अपनी जगह है, कई बार इन्हीं के सहारे पूरी जिंदगी कट भी जाती है, पर यही जीवन का लक्ष्य नहीं हो सकता।

निकटतम रिश्ता-नाता भी केवल रिश्तेदारी-नातेदारी के कारण वरेण्य नहीं हो जाता। हरएक रिश्ते-नाते के साथ उसके भाव का होनाजरूरी है, जिससे गुण व विशेषताएँ जुड़ी होती हैं। कर्तव्य व अधिकार न भी पूरे किए जाएँ, तब भी रिश्ता-नाता रह सकता है, किन्तु संबंधों की भावनाएँ-मर्यादाएँ भंग होने पर रिश्ता का कोई अर्थ नहीं रह जाता, बल्कि इससे व्यक्ति कलंकित होकर मरता है। जिस प्रकार शिक्षा के बिना कोई शिक्षक नहीं हो सकता, मिठास के बिना कोई चीज मिष्ठान्न नहीं कहला सकती, उसी प्रकार भ्रातृत्व के बिना भाई,मातृत्व के बिना माँ और मनुष्यता के बिना आदमी का कोई मूल्य नहीं। संभवतः इसी अभाव के कारण किसी भी रिश्ते में खटास उत्पन्नहोती है। संबंध जितना स्वयं पर निर्भर होता है, उतना ही अन्य पर भी। यह एकतरफा अकेले का नहीं होता, हालाँकि रिश्ते की पहली ववास्तविक अधिकारिणी हमारी आत्मा है, जिससे संबंधों की गहराई अकेलेपन की स्थिरचित्त स्थिति में ही उपलब्ध होती है। यह आत्मा ऐसी है कि जिसके लिए न तो कोई सगा है और न कोई पराया; न कोई शत्रु है और न कोई मित्र। न कोई इसका अपना है औरन यह किसी का अपना। यहाँ तक कि जिस देह में यह रहती है, वह देह भी इसका

अपना नहीं, उस देह का यह अपना नहीं। परमात्मा इसका अपना है, पर हर स्थिति में यह आवश्यक नहीं है।

जब पूरा संसार ही नाशवान है, तो स्वाभाविक है कि इसमें विद्यमान प्रत्येक चर-अचर वस्तु नश्वर होगी ही। सजीव मरकर नष्ट होते हैं, जबकि निर्जीव मर नहीं सकते, पर नष्ट होते हैं। इसीलिए इस संसार में अमरता के प्रति जबर्दस्त काल्पनिकता है। संसार की सर्व श्रेष्ठ कृति मनुष्य भी मर्त्य है, पर उसके रिश्ते-नाते अमर्त्य हैं। वैसे संसार और जीवन से भी पहले रिश्ते-नातों को झूठा व माया कहा गया है। झूठ व माया नहीं टिकती, सत्य टिकता है। मनुष्य का जीवन तो एक बार सत्य हो सकता है, किन्तु रिश्ते-नाते कितने सच हैं -यह परखनीय है। इसकी बोधानुभूति पौराणिक ग्रंथ-परायण की बजाय स्वयं द्वारा इस संसार में रहते हुए हो जाए तो यह बोधत्व की प्राप्ति होगी। मनुष्य और उसका जीवन मरणशील है, अतः बाकी चीजें अमर या दीर्घजीवी होकर भी क्या करेंगी? जीवन अनमोल है, जिसे सुगम, सुखद बनाने के लिए ही रिश्ते-संबंधों की बुनावट की गई है। संबंध-संपर्क, रिश्ता-नाता, लगाव-जुड़ाव सहित मनुष्य द्वारा निर्मित सब कुछ का एक ही ध्येय है कि ये आदमी के दिल-दिमाग को प्रखर बनाएँ, जीवन को चरमोत्कर्ष तक पहुँचाएँ।

जीवन को कंटकाकीर्ण बनाने वाली और मनुष्यता का गला घोंटने वाली कोई भी वस्तु महत्वपूर्ण-अपरिहार्य नहीं। जो चीज हितकारी होती है, वही सुन्दर भी लगती है, लेकिन हित देखने का सबका अपना-अपना पैमाना होता है, जहाँ अभिलाषाएँ, मान्यताएँ, शर्तें व मूल्य-दृष्टि की अहम भूमिका होती है। किसी रिश्ते का सौंदर्य भी इन्हीं बिन्दुओं पर दृष्टिगत होता है, इसलिए बिना शर्त रिश्ते-नातों के दावे वाले संबंधों के भीतर भी शर्तें रहती ही हैं। कहीं यह अदृश्य रहती है, तो कहीं यह साफ दिखाई देती है और कहीं-कहीं इसे अलग से संज्ञान मे लाने की सुधि नहीं रहती, जरूरत नहीं पड़ती। सच तो यह है कि इस दुनियाँ मे शर्तहीन कुछ भी नहीं है। यह सही है कि हर आदमी में कुछ अच्छाई-बुराई रहती है। यदि रिश्ता बनाना है, रखना है तो इन्हें पूर्णता में अंगीकार करना पड़ेगा और इसीलिए बेशर्त प्रेम-स्नेह- संबंध को श्रेष्ठ कहा गया है। आजकल के ज्यादातर लोगों के रिश्ते-संबंध इसी धरातल पर चल रहे हैं, तथापि रिश्तों में अच्छाई-बुराई आवरणहीन होकर साफ झलकनी चाहिए। संबंधों में स्वार्थ-उम्मीद न पालना जहाँ व्यक्तित्व की मजबूती का संकेतक है, वहीं मूल्यों-मान्यताओं का टूटना संबंधों की कमजोरी दर्शाता है, रिश्ते के उद्देश्य को पथभ्रष्ट करता है; फिर यहाँ तय करना पड़ता है कि रिश्ता-नाता किससे रखना है रिश्तेदार-नातेदार से या जीवन मूल्यों-उसूलों से या फिर दोनों से और क्यों? यह ध्यान रखना जरूरी है कि सब कुछ अपने निश्चय से ही नहीं चलता है, पर यह तो निश्चय कर ही सकते हैं कि पहले जीवन अहम है या रिश्ता? यदि जीवन अहम है तो रिश्तों के लिए सकारात्मक या नकारात्मक रूप में उसकी आहुति एवं बलि क्यों?